पंचम अध्याय

''नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ग्राम जीवन में प्रगतिवादी चेतना''

पंचम अध्याय

"नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ग्राम जीवन में प्रगतिवादी चेतना"

1) प्रयोगवाद।

2) प्रगतिवाद -

अ) प्रगतिवादी उत्पत्ति।

ब) परिस्थिति।

क) प्रगतिवाद उपलब्धियाँ :-

1) द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के दर्शन

2) नई सौंदर्य दृष्टि

3) काव्य वस्तु का विस्तार

4) यथार्थ वादी दृष्टि

5) लोककलाओं का उन्नयन

6) नई भाषा नई शैली

7) निष्कर्ष।

3) उपन्यास और चेतना -

1) चेतना का अर्थ - स्वरुप।

4) ग्रामव्यवस्था एक स्वरुप -

1) ग्राम का स्वरुप।

2) ग्रामचेतना निर्माण एवं निर्मिति के कारण ।

5) नागार्जुन के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ और समाजवादी चेतना।

6) नागार्जुन के उपन्यासों में विभिन्न आंदोलनों की अभिव्यक्ति ।

7) नागार्जुन के उपन्यासो में प्रगतिवादी विचार धारा।

निष्कर्ष ।

पंचम अध्याय

''नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ग्राम जीवन में प्रगतिवादी चेतना''

प्रास्ताविक :-

साहित्य मानव जीवन का अविभाज्य अंग है। साहित्य में जो परिवर्तन होता आ रहा है, उन्हें 'साहित्यिक आंदोलन', 'साहित्यिक क्रांति में नया मोड' भी कहा जाता है। 'साहित्यिक आंदोलन' यह शब्द साहित्य में जो नई रचनात्मक प्रवृत्ति आई है, उसके लिए स्विकृत या प्रचलित हो गया है। साहित्यिक आंदोलन को 'युग', 'धारा', 'प्रवृत्ति' आदि नामों का प्रयोग भी किया जाता है। इसके लिए एक बहुप्रचलित शब्द 'वाद' भी रहा है। 'वाद' शब्द का प्रयोग भारत के दर्शन की विभिन्न पद्धतियों में बार-बार हुआ है। 'आदर्शवाद', 'भौतिकवाद', 'द्वैतवाद', 'अद्वैतवाद', 'सर्वात्मवाद' आदि दर्शन की विभिन्न विचार पद्धतियों के पर्याय है। साहित्य दर्शन की इस पद्धति को ग्रहण करते हुअे आगे बढ़ा है। परिणामत: साहित्य में भी वाद शब्द का महत्व बढ़ गया। हिंदी साहित्य में अभिव्यंजनावाद, कल्पनावाद, रसवाद, राष्ट्रवाद ऐसे कई वाद आये और बाद में लुप्त भी हो गये। साहित्य के इस बदलते परिवेश को तथा साहित्यिक आंदोलन को अनेक विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया किन्तु वे इसमें सफल नहीं रहे। साहित्यिक आंदोलन के बारे में जी.हैरिसन ओरियन्स का मत है - ''साहित्यिक आंदोलन निर्जीव वस्तुओं का ऐसा ढ़ेर नहीं है, जिसे समय या अंत किसी ने कहीं डाल दिया हों, वह तो ऐसा साकार जीव है, जिसका विकास धिमा होता है। रबड़ के धागे के समान एक धारा या प्रवृत्ति जीवन की उपरी सतह पर उपस्थित हो सकती है और दिर्घ अवधि तक के लिए अदृश्य भी हो जा सकती है। यह आंदोलन फौजी आदेश के समान आकस्मिक रुप से एकाएक रुक भी नहीं सकता।'' इससे यह स्पष्ट होता है कि, साहित्यिक आंदोलन का जन्म, विकास पतन होता है। उसके विकास की गति धीमी होती है। साहित्यिक आंदोलन की अपनी एक प्रकृत गति होती है, वह स्वाभाविक रुप में ही संपन्न हो सकती है। वस्तुत: कुछ लेखक आपस में एक कार्यक्रम बनाकर कोई रचना प्रवृत्ति आरंभ करे तो साहित्यिक आंदोलन का सूत्रपात हो सकता है। अथवा भिन्न-भिन्न लेखक

अपने समसामाई कजीवन के बोध से संपृक्त हो तो समानता एक धरातल उन्हें मिल सकता है, और इसीसे साहित्यिक आंदोलन का सूत्रपात हो सकता है। इस बारे में सरिता माहेश्वर लिखती है - ''जिस प्रकार मनुष्य के उद्‌भव के कारण जैविक विकास की प्रक्रिया में निहित है, उसी प्रकार साहित्यिक आंदोलन के उद्‌भव के मूल कारण मनुष्य के सांस्कृतिक विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया में पाये जाते है।''[1] इसके बारे में रामचंद्र शुक्ल कहते है - ''इन बहुत सी 'वाद' - व्याधियों का प्रवर्तक है - 'व्यक्तिवाद' जो बहुत पुराना रोग है। पुराने रोग जल्दी पीछा नहीं छोड़ते - एक न एक रुप में बहुत दिनों तक बने रहते है।''[2] व्यक्तिवाद में व्यक्ति को महत्व दिया जाता है। व्यक्तिवाद मनुष्य के बौद्‌धिक विकास की एक अवस्था विशेष है। फ्रेंच में व्यक्ति के महत्व की उद्‌घोषण 'प्रतीकवादी आंदोलन', तो अंग्रेजी में इसे 'रोमांटिक आंदोलन', हिंदी में 'छायावादी आंदोलन' और बंगला में 'कल्लोलयुग' नास से प्रारंभ हुई थी। इग्लैड का 'चित्रवाद', फ्रान्स का 'प्रतीकवाद' और जर्मनी में उत्पन्न 'अभिव्यंजनावाद' आदि इसके उदाहरण ही है।

प्रयोगवाद :-

पुरानी काव्यधारा की गति एकाएक नई काव्य धार में सुत्रपात नहीं होती। यही कारण है कि छायावादी युग में द्विवेदीकालीन कविताएँ लिखी गयी, और प्रयोगवादी और प्रगतिवादी युग में छायावादी शैली की रचनाएँ लिखी जाती रही। तत्कालीन साहित्यकार पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के मंच पर होनेवाली उथल-पुथल का प्रभाव पड़ा इसीकारण साहित्य का स्वर बदल गया। समाज में किसानों और मजदूरों का जोर पकडने लगा। पूंजीपति वर्ग का जन्म उद्‌योगों के विकास के साथ-साथ हुआ। विश्व युद्‌ध के भीषण नरसंहार से उपजी विभिषीका भावद्रोही थी। समाज के नवनिर्माण में अंधविश्वास, रुढि, परंपरा रोडे बनते है। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व्यवस्था में एक गहरी असंगति और अवस्था थी। साहित्यकारों ने इन परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपनी रचनाओं द्वारा इसे व्यक्त करने का प्रयास किया। इस समग्र रुप को देखने पर यह पता चलता है कि, दो धाराएँ एक साथ विकसित हो रही थी। एक धारा के अंतर्गत जनता के दुख-दर्द की गाथा गायी जा रही थी, और दुसरी

धारा कला को प्राथमिकता देकर अपनी रचना कर रही थी। पहली काव्यप्रवृत्ति को 'प्रगतिवाद' संज्ञा दी गयी और दूसरी को 'प्रयोगवाद' कहा गया। दोनों के काव्य-सृजन का क्षेत्र अलग रहा है, लेकिन दोनो धाराएँ समानान्तर चली है। एक जनवादी विचारों से लेकर विश्व में घटित घटनाओं के प्रति सजग थी तथा देश में हो रहे क्रांतिकारी परिवर्तनों को समझ रही थी। यह धारा मार्क्सवादी दर्शन से प्रेरित वैज्ञानिक दृष्टिकोण को लेकर चली तो दुसरी निराशा, कुंठा आदि में डूब गई। यह धारा व्यक्तिवादी और समाज विरोधी धारा थी। इसमें निराशावादी साहित्यकारों ने अपने भीतर एक संसार का निर्माण कर लिया था और उसीमें मशगुल रहने लगे थे। यह एक आत्मकेंद्रित धारा बन गयी।

पहले 'प्रगतिवाद' और 'प्रयोगवाद' के कवि साथ-साथ रचना करते रहे, लेकिन 'तार-सप्तक' के प्रकाशन के बाद दोनों वर्ग के कवि दो पन्थों के पथिक हुये। हरिनारायण व्यास ने 'प्रगतिवाद' तथा 'प्रयोगवाद' का सैद्धांतिक अंतर स्पष्ट करते हुअे लिखा है कि, ''प्रगतिवाद ने भौतिक सत्य को अपनी आधार भूमि बनाया और 'प्रयोगवाद' ने मानसिक यथार्थ को प्रगतिवाद के भौतिकता पर आधारीत सामाजिक यथार्थ साहित्य में शीघ्र ही प्रविष्ट हो गया और 'प्रयोगवाद' की आधारभूति दीर्घकालीन साहित्य में स्वीकृति नहीं पा सकी।''[3]

साहित्यिक आंदोलन के कारण अनेक वादों की निर्मिती हो गयी। ये सभी वाद कुछ काल तक रहकर समाप्त हो गये। हर वाद का एक उद्देश्य, प्रमुखता रही है। छायावाद में व्यक्ति को महत्व दिया तो प्रयोगवाद में सौंदर्यप्रियता और कल्पकता पर आधारित मूल्यों की महत्ता रही लेकिन प्रगतिवाद सत्य पर आधारीत सामाजिक संबंधों को महत्व देता है, इसीकारण प्रगतिवाद का अस्तित्व दिर्घकाल तक दिखाई देता है।

प्रगतिवाद :-

प्रगतिवाद मूलत: विश्वसाहित्य में साम्यवादी विचारों की स्थापना करने का एक सशक्त माध्यम है। वर्ग संघर्ष की साम्यवादी विचारधारा इसका मूल उद्देश्य बनी है। इसी संदर्भ मं साहित्यकारों ने एक क्रांतिकारी कदम उठाया। हिंदी में अनेक सामंतवादी नायक और उनके गौरवमय

चरित्र साहित्य के माध्यम से प्रकाश में आये, किंतु सामान्य मानव की जीवनगाथा प्रकाश में नहीं आई। प्रगतिवादी लेखको ने अपने साहित्य का उद्देश्य लोकजीवन के बीच से एक नये मानव और नये नायक की खोज करना स्वीकार किया इसके द्वारा जो समाज की समस्त पतनशील प्रवृत्तियों के विरोध में जनसाधारण की शासनसत्ता को उभारने का सुअवसर प्रदान कर सके। अत: स्पष्ट है कि साम्यवाद में प्रगतिवादी चिंतन निहीत है। जनवादी शक्तियों को संगठित करके मार्क्सवाद और भौतिक यथार्थवाद के आधार पर निर्मित मूल्यों को प्रतिष्ठित करना ही इसका उद्देश्य है। मार्क्स ने विश्व को सर्वहारा -संघर्ष का मूल-मंत्र दिया। साहित्यकारों ने श्रमशक्ति का पूरी तरह से चित्रण किया है। प्रगतिशील साहित्य युग के संदर्भ में सामाजिक संबंधों को ही सत्य और शाश्वत मानता है। काल्पनिकता के लिए उसमें जगह नहीं होती। नूतन सामाजिक मानवता निरंतर पुरातन और जीर्ण-शीर्ण दानवी शक्तियों से नवचेतना से प्रेरित होकर युद्धरत रहती हुई, भविष्य में मंगलमय समाज की स्थापना के लिए प्रयत्नशील रहती है। रुढियों-परंपराओ पुरानी विकृतियों को फेंककर नई शक्तियाँ हाथ में लेकर अनागत भविष्य के लिए अक्षय प्रेरणा स्तोत्र बन जाती है। प्रगतिवादी साहित्य, संघर्ष के द्वारा पुरानी व्यवस्था का विध्वंस कर नवयुग और नई सामाजिक आवश्यकताओं को निर्माण करने का प्रयास करता है। इस बारे में डॉ.रामदशरथ मिश्र कहते है - ''प्रगतिवाद सुधारवादियों की भाँति जर्जर व्यवस्था के सडे-गले कपडों में पैबन्द जोडने का पक्षपाति नहीं है और न तो वह गला फाड-फाडकर निरुद्देश्य ध्वंस की पुकार मचानेवाला व्यक्तिवादी विद्रोह है। वह आमूल क्रांति चाहते है।''[4] प्रगतिवाद ईश्वरवाद की अपेक्षा कर्म और पुरुषार्थ को ही सफलता का आधार मानता है। देश और काल के अनुसार मानव की प्रगतीशीलता का कारण केवल भौतिक विकास है। मानव - विवेक ही सारे मूल्यों का सृजन करता है। मार्क्स की विचारधारा इस बात को नहीं मानती बल्कि इस बात में विश्वास करती है कि मानव विवेक के साथ-साथ मानवीय अनुशासन और सदाचरणों से ही मानव की प्रगतिशीलता संभव है। अत: मानव मूल्यों के विकास में प्रगतिशील विचारों की आंतरिक दृष्टि दिखाई देती है।

प्रगतिवाद उत्पत्ती :-

कोई भी 'वाद' अथवा 'युग' की निर्मिती काल की उपज होती है। इस बारे में राहुल सांस्कृत्यायन का मत है कि - "वाद ऐतिहासिक आवश्यकता के प्रतीक होते है।"[5] किसी भी वाद के निर्माण में काल की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थिति भी प्रभाव डालती है।

परिस्थिति :-

भारत में सामंती व्यवस्था ने साम्राज्यवाद के सहयोग से बीसवीं शताब्दि के आरंभिक दशकों में शोषण चक्र का आरंभ किया। उसमें जातिद्वारा जाति का शोषण, व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का शोषण तथा अफसरशाही, पूँजीवादी आदि ने जोर पकड़ लिया। इस समय शोषकों के दो रुप सामने आये, एक ओर ग्रामीण जनजीवन में, सामंती, सूदखोरी, धार्मिक पाखंड, जमीनदार आदि किसानों और मजदूरों का खून चूसनेवाली व्यवस्था तो दुसरी ओर शहरों में पूंजीवादी, मशनरी मजदूरों के दमन और शोषण का काम कर रही थी। शोषण के इन रुपों के कारण वर्ग संघर्ष आरंभ हुआ, जिसमें मार्क्सवादी दर्शन सहायक बना। मार्क्सवादी विचार के कुछ साहित्यकारों और राजनीतिज्ञों ने जनता में जागृति लाने का प्रयास किया। किसान-मजदुरों के संगठन, रुसी क्रांति का प्रभाव, हडताल, अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना, पत्र-पत्रिका लेखकों की सहयोग वर्गसंघर्ष और चेतना पर लेख, अत्याचार, अन्याय का विरोध, क्रांति एवं नवनिर्माण का आवाहन आदि के परिणामस्वरुप प्रगतिवाद प्रभावी बना। इंग्लैंड में सज्जाद जहरी, मुल्कराज आनंद, जी. सी. घोषण, एम. सिन्हा आदि ने 1935 में भारतीय प्रगतिशील लेखक - संघनामक संस्था की स्थापना की और उसमें उद्देश्यो, योजनाओं का विस्तृत पत्र भारतीय मित्रों को भेज दिया। इस पत्र का भारतीय साहित्यकारों पर गहरा प्रभाव पडा। उनमें चेतना की सशक्त लहर आयी। तथा उन्हें नई दिशा मिली। प्रेमचंद की अध्यक्षता में 1936 अप्रैल में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। लखनऊ में इसे 'प्रगतिशील लेखक सम्मेलन' में बडे उत्साह से हिंदी और उर्दू साहित्यकारों, प्रादेशिक भाषाओं, बोलियों के रचनाकारों, पत्रकारों ने बहुत बडी संख्या में भाग लिया। 1938 में कलकत्ता में संपन्न संम्मेलन की अध्यक्षता के लिए रविंद्रनाथ ठाकुर को आमंत्रित

किया, लेकिन अस्वस्थता के कारण नहीं आये। 1940 में पूना में इसका सम्मेलन हुआ इसके अध्यक्ष पं.नन्ददुलारे वाजपेयी थे।

प्रगतिवादी चेतना सामाजिक यथार्थ तथा विश्व राजनीति के समूचे परिप्रेक्ष्य से उत्पन्न हुई। भारत की अपनी प्रगतिशील राष्ट्रीय चेतना तथा ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध संघर्षरत भारतीय जनता की आकांक्षाओं के साथ विभिन्न प्रकार के अन्य सामाजिक, राजनीतिक संदर्भ भी जुडे हुअे थे। सन 1930 से सन 1947 तक का काल क्रांतिकारी और उथल-पुथल वाला था। ब्रिटिश साम्राज्य में किसानों और मजदुरों को होनेवाला शोषण, द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका, बंगाल का भयंकर अकाल, महात्मा गांधी का असहयोग आंदोलन, देश का विभाजन, सांप्रदायिक दंगों का आरंभ, 1947 में भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता आदि का प्रभाव बौद्धिक वर्गोपर पडा। इसीकारण जनवादी तथा मानववादी रचनाओं में इन सभी परिस्थितियों का चित्रण देखने को मिलता है।

प्रगतिवाद को केवल साहित्यिक रुप में ही स्विकार नहीं किया गया बल्कि जीवन दर्शन के रुप में भी स्वीकार किया गया। डॉ. शिवदानसिंह कहते है - ''हिंदी की आधुनिक प्रगतिवादी प्रवृत्ति का आकस्मिक विकास नहीं हुआ है बल्कि हमारे राष्ट्रीय जागरण काल की सबसे स्वस्थ सजीव परंपराओं का स्वाभाविक, जिसे अनिवार्य भी कह सकते है, विकास है।''[6] जनवादी तथा मानववादी साहित्यकार अपनी आस-पास की परिस्थिति को जैसे देश में व्याप्त अन्याय, शोषण, विषमता को नजर अंदाज नहीं कर सकता, वैसे अपना दायित्व को भी नहीं भुलता है। तभी वह सच्चा साहित्यकार बन सकता है। इसके बारे में अग्रवाल का कथन है कि, ''आज के साहित्यकार को ऐसे ही साहित्य की सृष्टि करनी चाहिए जो मनुष्य के अज्ञान, जड़ता, अंधीपरंपरा, बौद्धिक दारिद्रय और कायरता को दूर करके मानव मात्र में आत्मबल का संचार कर सके।''[7] प्रगतिवादी साहित्य इसका प्रमाण ही है। प्रगतिशील साहित्य समाज के क्रांतिकारी तत्वों को लेकर चलनेवाला 'साहित्य' है। यह साहित्य दलित, शोषित, समाज की क्रांतिकारी शक्तियों को उभारता है, उनकी शक्ति को संगठित करता है, उनकी पीडा को मुखरित करता है, उनपर होनेवाले अत्याचार का तीव्र विरोध करता है। यह साहित्य जनता की दूर्दशा का भी चित्रण करता है।

जनता में राजनीतिक, सामाजिक चेतना का विकास करना ही प्रगतिवादी साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है। साथ-ही-साथ जनसाधारण की मानसिकता को विकसित करना, जनता में अस्मिता का निर्माण करना आदि भी उद्देश्य है। प्रगतिवादी का मूल स्वर निर्माण में निहीत दिखाई देता है। विध्वंस का आहवान केवल निर्माण के लिए ही किया गया है। सामाजिक यथार्थ को प्रगतिवाद इस प्रकार चित्रित करता है कि कुरुप, शोषक, सड़ी-गली, विसंगति ग्रस्त शक्तियों का पर्दाफाश हो और नई सामाजिक शक्तियों के संघर्षों युयुत्सा और आस्था को बल मिले। यह दृष्टिकोण प्रगतिवादी साहित्य के सर्जना के मूल में काम कर रहा है।

प्रगतिवाद उपलब्धियाँ :-

सभी काव्य आंदोलनों में प्रगतिवाद का एक अलग स्थान रहा है। काव्यरचना को प्रगतिवाद ने प्रभावित किया है और काव्य रचना को नये आयाम दिये है। इन आयामों द्वारा प्रगतिवाद का स्वर निश्चित हो गया तथा उसकी विशेषताएँ भी महत्वपूर्ण बनी है जो इसप्रकार है -

1) द्वंद्वात्मक भौतिकवादी दर्शन :-

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को प्रगतिवाद ने अपनी काव्य-चेतना का आधार बनाया। हिंदी काव्य में द्वंद्वात्मकता भौतिक दर्शन और वैज्ञानिक दृष्टि का सारा श्रेय प्रगतिवादी को दिया जाता है। उसमें मनुष्य के जीवन से संबंधित सभी वस्तुओं, परिस्थितियों, प्रकृति को अपने काव्य का लक्ष्य बनाया। पुरानी जीर्ण-शीर्ण विकृतियों के प्रति विरोध और भविष्य में मंगलमय समाज की स्थापना यही मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवादी दर्शन का सार तत्व है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद एक नया जीवन दर्शन के रुप में प्रस्तुत हो गया और बीसवी शताब्दी के मनुष्य को एक नई दृष्टि, नई दिशा मिली।

2) नई सौंदर्य दृष्टि :-

सौंदर्य का नया रुप प्रगतिवाद ने उच्च वर्गिय अवधारणाओं के बजाय मेहनतकश जनता तथा उसके द्वारा किये गये श्रम और निर्माण उत्पादन आदि को आधार बनाकर सौंदर्य का नया रुप प्रस्तुत किया।

3) काव्य वस्तु का विस्तार :-

काव्य की सीमाओं को असीम बनाने कार्य प्रगतिवाद की सामाजिक चेतना ने किया। प्रगतिवाद ने काव्य में जिन विषयों को वर्जित किया गया था उसे विषय वस्तु बनाकर स्थापित किया। इसने न केवल काव्य की अन्तर्वस्तु को व्यापकता प्रदान की बल्कि इसकी गहराई तक जाकर काव्य वस्तु का विस्तार भी किया और काव्य को सामाजिक परिवर्तन का अस्त्र बनाया।

4) यथार्थवादी दृष्टि :-

प्रगतिशील साहित्यकारों के विचारो में सामाजिक संघर्ष और क्रांति की भावना है। पुरानी रुढ़ी-परंपराओं तथा जीर्ण-शीर्ण विकृतियों के प्रति विरोध और मंगलमय समाज की स्थापना यही प्रगतिवादी काव्य का लक्ष्य है।

5) लोककलाओं का उन्नयन :-

प्रगतिवाद ने काव्य को लोककलाओं एवं लोकजीवन से जोडने का प्रयास किया। प्रगतिवादी ने लोकगीतों को साहित्यिक दर्जा दिया और कविता को एक नया मोड प्रदान किया।

6) नई भाषा नई शैली :-

प्रगतिवादी काव्य ने नई विषयवस्तु के साथ नई भाषा का निर्माण किया। परिस्थिति का सफल चित्रण, मानवता और नई चेतना का एवं जनवादी चेतना का अंकन करने का पूरा श्रेय प्रगतिवादी काव्य को जाता है। इस कार्य में भाषा और बोलियों से शब्दों और मुहावरों को लिया है, विभिन्न अलंकारों, उपमाओं का प्रयोग करके व्यंग्यात्मक शैली का निर्माण किया।

इस प्रकार प्रगतिवादी साहित्य में हिंदी साहित्य को एक नया योगदान प्रदान किया।

निष्कर्ष :-

प्रगतिवाद का आधार मार्क्स की विचारधारा है और साहित्य का समाजवादी यथार्थ 'प्रगतिवाद' है। प्रगतिवादी लेखकों की दृष्टि में वह साहित्य सफल है, जो शोषित मानवों की पीड़ा ,

वेदना तथा उनके प्रति किये गये शोषण और अन्याय का पर्दाफाश कर सके, मेहनतकश मजदूरों की आवाज को बुलंद कर सके, आर्थिक विषमताओं के मूल कारणों को समाप्त करने की दिशा में प्रयास करे, उपेक्षित और पीड़ित लोगों का चित्रण कर सके।

विश्व के प्रगतिशील उपन्यासकारों ने मानव के आर्थिक पहलू को ही विशेष महत्व दिया। युगों युगों से चली आई हुई शोषण चक्र में पिसते हुए मानव-जीवन की कहानी साहित्यकारों और पाठकों के लिए आकर्षण का केंद्र बनी। साहित्यकारों के लिए लेखनी का प्रेरणास्रोत बन गई। परिणामत: मानवी जीवन की यथार्थ धरातल को उजागर करने का कार्य प्रगतिवादी साहित्यकारों ने किया है।

उपन्यास और चेतना :-

उपन्यास मानवी जीवन का दर्पण होता है। उसे मानवी जीवन का 'महाकाव्य' कहा जाता है। मानवी जीवन में घटनेवाली घटनाएँ, चेतना आदि का विस्तृत फलक उपन्यास है और वही जनपद का नायक बन जाता है। उपेक्षित ग्रामों की समस्याओं और जीवन मूल्यों की कथा कहना उसका उद्देश्य होता है। नागार्जुन के उपन्यास मिथिलांचन से जुडे हुअे है। यह सच है कि उपन्यासकार जिस अंचल, भूप्रदेश से संबंध रखता है, जहाँ निवास करता है, वहाँ की जीवन की झाँकी उनकी रचनाओं में दिखाई देती है। उनके विचार का प्रतिबिंब कथा में रहता है। उनकी रचना एवं कथा में आंचल के जीवन, परंपराओं, प्रगतियों, झाकियों का जितना प्रभावी चित्रण होगा, रचनाकार उतनाही सफल लेखक बनेगा। इसी दृष्टि में नागार्जुन एक श्रेष्ठ रचनाकार रहे है।

मिथिलांचल का जीवन, भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक परिवेश, समस्या तथा उससे उत्पन्न पिछडापन, जनजीवन की मान्यताएँ, विकास आदि का सशक्त वर्णन हुआ है। एक तरह से आंचल का जीवन भीतरी-बाहरी दृष्टि से उजागर करने का प्रयास किया है। असली भारत ग्रामों तथा दूर दरार के आंचलों में रहता है। अत: जीवननुभवी और जीवन चेतना का आपसी संबंध रहा है। जनजीवन की चेतना और जनजीवन का चित्र में रेखाएँ खिंचना कठिन काम है। नागार्जुन की रचनाओं में उपन्यासों में जनचेतना, चेतना की प्रेरणा के दर्शन होते है। भोगा हुआ यथार्थ का अंकन करना इसकी विशेषता रही है।

चेतना का अर्थ-स्वरुप :-

मानव सजीव एवं चेतित जीव है। जीव और चेतना का संबंध रहा है। जड़ चेतनाहीन होता है, चेतित करनेवाली प्रवृत्ति चेतना होती है। चेतना का अर्थ जीवन में मिलनेवाली प्रेरणा है, वही एक ऐसी शक्ति है, ताकद है जो अन्याय के विरोध में लड़ सकती है। प्रेरणा प्रेरक शक्ति रही है, उसे अस्तित्व की रक्षा की भावना एवं विद्रोह करने की समर्थ भावना माना है। चेतना के कारण मानव अपने जीवन पथपर चलने में सफल हो सकता है। यह चेतना जीवन जगत में दिखाई देती है। यह मानव जीवन की सहज प्रवृत्ति रही है, इसके कई अर्थ है -

मराठी शब्दकोश में - ''चेतना, चैतन्य, ज्ञात, होश, प्राप्त शक्ति, जीवनशक्ति, जननशक्ति, आकलन शक्ति, ग्रहण शक्ति।''[8]

हिंदी मराठी शब्दकोश - चेतना शुद्‌धि, जागे होणे, चेतना, सावध होणे।[9]

हिंदी-अंग्रेजी शब्दकोश - "Awarness, Consciousness"[10]

चेतना का अर्थ - अनुभवि एहसास।[11]

हिंदी विश्वकोश - चेतना से चैतन्य / होश में आना / सावधान होना / सोचना / समझना।[12]

डॉ. काशिनाथ अंबलगे के शब्दों में - ''चेतना प्राणीमात्र में निहित वह शक्ति है जो उन्हें निर्जीव और जड़ वस्तुओं से अलग बनाती है। और उन्हें चैतन्यमय बनाकर सजीव सिद्‌ध करती है।''[13]

चेतना सदैव मनुष्य को प्रभावित और उद्दीलित करती रहती है, जो कुछ नहीं है उसे पाने की चेतना और कुछ है उसे बचाने की चेतना।[14]

देवेश ठाकुर के शब्दों में - ''चेतना वह शक्ति है जो व्यक्ति को जीवंत बनाये रखती है। किसी भी व्यक्ति समाज अथवा राष्ट्र की जीवनता का प्रमाण चेतना ही होती है।''[15]

डॉ. बैजनाथप्रसाद शुक्ल के मतानुसार ''चेतना को युग वैभव और साहित्य की सामग्री मानते है।''[16]

डॉ. पांडुरंग पाटील के मतानुसार - ''युग चेतना को साहित्य का धर्म मानते है। युग चेतना का प्रतिनिधित्व करनेवाली साहित्य युगीन भावनाओं परिस्थितियों से भिन्न नहीं हो सकता।''[17]

यहाँ स्पष्ट है की चेतना का अर्थ प्रेरणा जागरुकता, विद्रोह, शक्ति है। चेतना का अर्थ अपने आपको पहचानना, विद्रोह करना भी रहा है। समाजव्यवस्था का समाज जीवन एवं मानवी जीवन का यह एक अंग है। वैश्विक तत्व 'चेतना' चैतन्य ही है। साहित्य में इसके दर्शन होते है। साहित्य के धरातल पर शोषण के खिलाफ विद्रोही चेतना मानना अनुचित नहीं रहेगा। चेतना के कारण युगीन साहित्य कालातीत बनता है।

ग्रामव्यवस्था एक स्वरुप :-

ग्राम व्यवस्था में प्राचीन काल से संपत्ति, सत्ता, वंश, परंपरा के आधारपर निर्धन गरीब पीडित का शोषण हो रहा है। यह शोषण अन्याय, अत्याचार का घृणास्पद व्यवहार ही है। 'दास' अधिकारहीन व्यक्ति रहा है। 'मनुस्मृति' में भी दास का उल्लेख रहा है। अधिकारहीन व्यक्ति का जीवन जीनेवाला मानव 'दास' कहलाता है। आज की व्यवस्था में भी ऐसे मानवी जीवन के दर्शन होते है। हो सकता है - शोषण का रुप बदला हो। आर्थिक विषमता, परंपरा, अज्ञान, रुढि, जाति व्यवस्था का शिकार बना 'दास' मानवता पर धब्बा ही है।

भारतीय ग्राम एवं समाज व्यवस्था में धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक दासता अति प्राचीन है। अनेक आघातों, व्याघातों परिवर्तनों को सहते हुए यह प्रवृत्ति टिकी है। समाज व्यवस्था में बलिष्ठ व्यक्ति निर्बलों को शोषण करती ही है। जिसके पास बल है, ताकद है उसे जिनको अधिकार है ऐसा भी कहा जाता है। परंतु सभी के लिए यह तत्व कहाँ तक उपयोगी है ? व्यवस्था में यही प्रश्न उठाया जाता है। समाज का इतिहास दास व्यवस्था से लेकर पूँजी व्यवस्था तक वर्ग संघर्ष का इतिहास है।''[18]

प्राचीन काल से मानव ही मानव का शोषण करता आ रहा है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक दृष्टि से पीडित वर्गों का शोषण हो रहा है। इसके पीछे अज्ञान, अर्थाभाव, अंधश्रद्धा ही है। ग्राम

व्यवस्था को समस्त जन इसमें पिसता ही जा रहा है। धनी वर्ग धन के बल पर अधिकारी पद के सहारे धार्मिक व्यक्ति धर्म के नाम पर ग्रामीण जनता का शोषण कर रहे है। उच्च-निचता, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक ऐसी मान्यताओं का आधार लेकर इसे बढावा दिया जा रहा है।

ग्रामीण लोग रुढिप्रिय, भावुक, परंपराप्रिय रहे हैं। इसका जी-जान से निर्वाह करते है। आज भी ऐसी व्यवस्था बनी रहे यही विचारधारा रही है। उच्चवर्ग की प्रतिष्ठा, सन्मान आदर को धक्का न पहुँचे यही मान्यता है। मेहनत का जीवनयापन करनेवाले ग्रामीण जन आज भी 'सर्वहारा' रहा है।

निकोलस लैंग्वे ने यह प्रमाणित किया कि, ''मजदूरी यह काम करनेवाला श्रमिक सबसे बुरे किस्म की दासता का शिकार होता है।''[19] यह कथन ग्रामव्यवस्था के लिए भी यथार्थ लगता है। यह सच है कि आज के समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। अर्थात सर्वहारा का संघर्ष वर्ग संघर्ष का एक पहलू है। पूँजीवादी और समाजवादी व्यवस्था के बीच का एक पक्ष ही है।

सर्वहारा वर्ग का अपना साहित्य होता है। जिस प्रकार मजदूर वर्ग अपनी दुनिया बनाता है, क्रांतिकारी परिवर्तन लाता है। इसी तरह साहित्यकार भी चेतना निर्माण करता है। उनका अपना दृष्टिकोन तथा सौंदर्य रहता है। मार्क्स ने कहा है, ''सुंदर का अस्तित्व सिर्फ चेतना के लिए होता है।''[20] यहाँ स्पष्ट है मार्क्स चेतना को साहित्य सौंदर्य की दृष्टि से देखना चाहते है। चैतन्य यह सौंदर्य भी रहा है।

ग्राम का स्वरुप :-

ग्रामीण समाज प्राचीन काल से वर्ग तथा जातिव्यवस्था से पीडित रहा है। ग्रामीण भातर में जिस प्रकार एक खास तरह की जाति और वर्ग का स्वरुप उभर रहा है। जिसमें जमीनदारों और अमीरों, किसानों जैसे उभरते हुए वर्ग पर जो सुविधाओं की बौछार हो रही है, पर इसके लिए गाँवों की गरीब जनता को कंगाल तथा सर्वहारा बनाया जा रहा है।''[21] इससे स्पष्ट है आजादी के पश्चात एक ओर विकास योजनाओं का दौर चल रहा है। साथ-ही-साथ सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रारंभ हुआ है। सामाजिक क्रांति की प्रक्रिया के मूल में चेतना ही रही है।

ग्रामों के बदलते स्वरुप पर विचार करते हुअे डॉ. ज्ञानचंद गुप्त कहते है - "परंपरा और प्रगति अंधविश्वास और विज्ञान स्वार्थलिप्सा और सरलता का संघर्ष गांव की जीवन स्थिति को नई भंगीमा प्रदान कर रहा है।"[22] आज पुराने रीतिरिवाज नहीं रहे। ग्रामजीवन बदल रहा है। "आज के गाँव का अर्थ अशिक्षित असहाय, निराधार, नंगे-भूसे, बेरोजगार, कुंठित लोगों का एक अंधकाराछन्न संस्कार जो पुराना रह न सका और नया आकार भी ग्रहण न कर सका।"[23]

धर्मवीर भारती ने "देश की बुनियादी इकाई गाँव को माना है। "[24] राजेश वर्माजी ने गाँव को भारतीय सभ्यता संस्कृति की रीढ़ और परंपरागत केंद्र माना है। उनकी धारणा है भारतीय संस्कृति सभ्यता का जन्म गाँवों में ही हुआ।"[24]

यहाँ स्पष्ट है भारतीय जनजीवन का आधार ग्राम ही है। यहाँ कहाँ जाता है 'हिंदुस्थान' नगरों का नहीं बल्कि गांवों का देश है। आज भी दूरदूर गावों का अपना प्राचीन रुप सुरक्षित रहा है। साहित्यकारों ने उसे अपनी रचनाओं में दर्शाया है। ग्रामजीवन की परिवर्तित स्थिति प्राचीन परंपरा के प्रति आस्था, नये संदर्भ, नये मुल्य, प्राचीन मूल्यों में संघर्ष, नयी युवा पीढ़ी की स्थिति, उनकी नयी विचारधारा का चित्रण होने लगा। अत: आज ग्रामजीवन ही साहित्य एवं चिंतन का एक विषय बना है, ऐसा लगता है।

ग्रामचेतना का निर्माण एवं निर्मिती के कारण :-

आज का साहित्य मानव जीवन की कहानी है। ग्रामजीवन को लेकर साहित्य समृद्‌ध बना है। ग्रामीण आंचल में रहनेवाला समाज चेतित एवं जाग्रत होकर अपने अन्याय के विरुद्‌ध विद्रोह कर रहा है। शोषण दमन का विरोध करके नवसमाज मानवतावाद का निर्माण करने में योग दिया जा रहा है। आज का साहित्य चेतना का पक्षधर है। प्रेमचंद, निराला, भगवतीप्रसाद शुक्ल, रांगेय राघव, रेणु, जगदीशचंद्र, मदन दीक्षित, अमृतलाल नागर, डॉ. शिवप्रसादसिंह, भैरवप्रसाद गुप्त आदि जैसे अनेक रचनाकारों ने ग्रामजीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। सरकारी विकास योजना, उदारनीति, संविधान की सहायता, समाज सेवकों और सेवाभावी व्यक्तियों के कार्य ने प्रभाव के कारण ग्रामसमाज जाग्रत हो सका। परिणामत: शोषित, अन्याय, अत्याचार के लिए विद्रोह करने लगा।

आज के उपन्यास मानव जीवन एवं समाज के संघर्ष को गहरी संवेदना से प्रस्तुत करने में सक्षम है। मानव समाज एवं जीवन की दारुण स्थितियों को चित्रित करने में सफल है। किसान, मजदूर, नारी, दलित आदि की आशा-आकांक्षाओं को व्यक्त करने का कार्य आंचलिक उपन्यास कर रहे है। हिंदी साहित्यकारों में साहित्य में लोक संस्कृति, लोक जीवन की ओर ध्यान देकर 'जनवादी साहित्य' का निर्माण किया। इसे प्रगतिवादी चेतना का कारण मानना अनुचित नहीं होगा।

आजादी के साथ देश विकास का बीडा उठाया गया। पंचवार्षिक योजना के सहारे विशिष्ट लक्ष्य प्राप्ति का सहेतु कार्य किया जाने लगा। याता-यात, शिक्षा, स्वास्थ्य, औद्योगिकरण, रक्षा, खेती, कुटीरोद्योग, पिछडी अप्रगत जनजाती का विकास आदि विभिन्न क्षेत्रों में कार्यारंभ हुआ। धीरे-धीरे ग्रामजीवन में परिवर्तन की लहर दौडने लगी। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक नेता, संस्थाओं ने इस कार्य में योगदान दिया। जिसमें सामान्य से सामान्य व्यक्ति में भी चेतना का निर्माण हुआ। अपने विकास, अस्तित्व की रक्षा के लिए किया गया संघर्ष, चेतना ही है। ग्राम अपने शक्ति को समझने लगा, सचेत होकर संगठित बना, जड़ता को समाप्त कर सक्रिय बना यही चेतना है। डॉ.मोहन कपूर ने इसे ''मानसिक अवधान माना जिसके अंतर्गत स्वविवेक, संप्रेषणियता, जागरुकता, अनुभवि मनोविज्ञान, संवेदना आदि विशेषताएँ मानी।''[26]

ग्रामजीवन में परिवर्तन के कारण समाज व्यवस्था में भी बदलाव आकर हर एक वर्ग के स्तर में चेतना का निर्माण हुआ। परंपरागत साहित्य में परिवर्तन हुआ। डॉ. नामवरसिंहजी ने कहा है - ''पिछले दशक से दलितों, स्त्रियों एवं समाज के विभिन्न तबकों के रचनाकारों ने परंपरागत ढाँचे को हिलाने, डुलाने, कुछ तोडने एवं नया जोडनेवाला साहित्य लिखा गया।''[27] यहाँ परंपरा में रहकर उपेक्षितों का जीवन चित्रित होने लगा। इसे साहित्यिक क्रांति कहा जा सकता है। क्रांति ने सामाजिक क्रांति को बल दिया, परिणामत: ग्रामजीवन में नयी चेतना जागृत हो गयी। डॉ. सुरेश बत्रा ने ''दलित और शोषित वर्ग की वास्तविक स्थिति को, स्पष्ट करनेवाला पहला साहित्यकार प्रेमचंद को माना है।''[28]

अत: स्पष्ट है ग्रामजीवन और साहित्य का संबंध रहा है। परिवर्तित जीवन के कारण साहित्य परिवर्तित एवं परिचायक हुआ। तथा परिवर्तित साहित्य के कारण ग्रामजीवन में नया भाव जाग उठा। ''जब तक ग्रामीण जनता खुशहाल नहीं होती और गाँवों की तस्वीर नहीं बदलती, देश की तरक्की नहीं मानी जा सकती।''[29] इससे स्पष्ट है देश के विकास में ग्रामविकास का, ग्रामविकास में साहित्य एवं चेतना का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। ''ऐसा साहित्य मनुष्य के सर्वांगिण विकास के उद्देश्य से लिखा जाता है। जिससे हमारी सामाजिक चेतना प्रखर होकर और सौंदर्य बोध की हमारी कृतियाँ भी संमुख हो जाती है। आधुनिक हिंदी साहित्य की मूलधारा भी हमें इसी ओर बढने की प्रेरणा देती है।''[30] अत: स्पष्ट है साहित्य की रचनाएँ चेतना निर्मिती में सहायक होती है।

नवजागरण काल में समाजसुधार, रुढियों का विरोध, अत्याचार के प्रति विद्रोह, शोषित, पीडित, दीन-दलित-ग्रामजनों के लिए अधिकारों की मांग, उस वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति आदि भाव दिखाई देते है। नवजागरण काल में साहित्य ने सिर्फ राजनीतिक आंदोलन को दिशा नहीं दी बल्कि सामाजिक एकता को भी बढावा दिया। सामाजिक समस्या को उजागर किया। सामंतवाद, रुढी परंपरा, धर्म का विकृत रुप आदि को चुनौति देने का तथा समाज सुधार का कार्य भारतेंदु जी ने किया। परोपकार, दया, मानवता, प्रेम का संदेश दिया गया। इसीकारण राजनीतिक और साहित्यिक चेतना को नई दिशा मिली। ग्रामजीवन की ओर साहित्यकार आकर्षित हुआ।

गांधीजी के 'देहात की ओर चलो' नारे ने साहित्य में हलचल मचाई। मनोरंजन का कार्य करनेवाला साहित्य मानव जीवन का चित्रण-वर्णन करने में व्यस्त रहा। वर्णव्यवस्था, जात-पात, नारी किसान की स्थिति, ग्रामीण व्यवस्था-शोषण उनमें उत्पन्न नई व्यवस्था, चेतना, विद्रोह आदि विषयों पर बड़ी सहानुभूति के साथ रचनाएँ लिखी गयी। ग्राम जीवन के प्रति संवेदना रखकर मानवीय अधिकार प्रदान करने की कामना भी की गई। इस युग की दृष्टि व्यापक एवं मानव कल्याण की भावना से परिपूर्ण थी।

मानवतावादी विचारधारा से प्रेरित होकर ईश्वर के स्थान पर मानव को भी अध्ययन, मनन, चिंतन का विषय बनाकर मानव महत्ता का उद्घोष किया गया। मार्क्स प्रणित सर्वहारा वर्ग में

मजदूर शोषित ही लगता है। भारत में अंग्रेजी शासन काल में आधुनिक उद्योगधंदों, यातायात के साधनों की स्थापना हुई। जिसके कारण आधुनिक मजदूर वर्ग का जन्म हुआ। आधुनिक कारखानों, खान उद्योगों, आवागमन के साधनों की वृद्धी हुओ। परिणामत: सर्वहारा वर्ग में आर्थिक विषमता का शिकार वही हुआ। अर्थात ग्रामीण जन-जीवन इससे अधिक प्रभावित रहा है।

स्वाधिनता की प्राप्ति ने ग्रामचेतना को बल दिया। स्वतंत्रता से ग्रामीणों में बड़ी आशाएँ जाग उठी। आजादी के कारण सपने सजानेवाले लोगों को सुनहरा भारत देखना था। कुटीर उद्योग बने, कृषि में नया तंत्र स्थापित हुआ, कारखानों का निर्माण हुआ। साथ-ही-साथ भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, जातिपात से प्रभावित राजनीति को भी सहना पडा। आजादी के लिए सभी लोगों ने योगदान दिया। भाट, काव्य गाते रहें है, साहित्यकारों ने रचनाएँ लिखी परंतु आज उनके सपने अधुरे रहे है। वर्तमान समाज में बदलते हुओ जनजीवन और उनके जीवन मूल्यों में मनुष्य को जटील बना दिया है।

आंचलिक उपन्यासों में ग्रामों की बदलती हुई स्थितियों, उभरते नये मुल्यबोधों, परिवर्तित संदर्भों, टूटते-बनते नये संबंध, नई मानसिकता, नये चरित्र विकास की आवश्यकता है, क्योंकि इन गाँवों में वर्ग संघर्ष चल रहा है। तथा राजनीतिक चेतना की समझदारी उनमें नई मानसिकता का रुपायन कर रही है। ग्रामीण जनों की अवस्था, उनपर होनेवाले जुल्म, अत्याचार कारण उनमें जो भाव उत्पन्न हुआ जो नया विचार सामने आया, उसी को उपन्यासकार ने चेतना के रुप में प्रस्तुत किया, चेतना को बल दिया। साहित्यकारों का यह कार्य सामाजिक प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

यहाँ स्पष्ट है - समाज सुधारकों का कार्य सरकारी विकासनीति, राजनीतिक नेताओं का कार्य, नवजागरण आंदोलन, ग्रामविकास अभियान, शिक्षा प्रसार, संतो-भक्तों-साहित्यकारों का कार्य, प्रसारमाध्यमों का योगदान, मार्क्सवादी तथा प्रगतिवादी विचारधाराओं का प्रभाव, ग्रामीण युवा में नये विचारों का प्रभाव आदि कई ऐसे कारण है जिससे ग्राम जीवन चेतना का निर्माण हुआ। यह सच है, जब तक ग्राम जीवन में संगठन, शिक्षा प्रसार, एकता का भाव पैदा नहीं होता तब विकास नहीं और न चेतना का प्रसार। परंतु आज का परिवर्तित ग्रामजीवन देखने से यह स्पष्ट होता है कि अब ग्रामजीवन में चेतना का निर्माण हो रहा है। नई संस्कृति, नये मूल्य, नया विचार प्रसारित हो रहा है, ऐसा लगता है।

※ नागार्जुन के उपन्यास में ग्रामीण जीवन का यथार्थ और समाजवादी चेतना :-

नागार्जुन समाजवादी चेतना के कथाकार है। अपने ग्रामीण संस्कारों के कारण वे स्वातंत्र्योत्तर भारतीय ग्रामीण जीवन के आस्था विश्वासों, जीवनव्यापी संघर्षो और उनकी विकासन्मुखी चेतना को अपने उपन्यासों के माध्यम से यथार्थ चित्रण करने में सफल हुए है।

नागार्जुन ने बिहार के मिथिलांचन को अपने उपन्यासों का कथा क्षेत्र बनाया है। ''जहाँ किसानों का शोषण है, सामाजिक जीवन में गरीबी, भुखमरी, विषाद उत्पीडन, अनमेल विवाह, उपेक्षा अत्याचार, अमानवीयता, विधवा विवाह तथा अनयाय समस्याएँ और विसंगतियाँ विद्यमान है।''[31]

प्रेमचंद के उपन्यासों की भाँति नागार्जुन ने उपन्यास व्यापक नहीं है किंतु - ''प्रेमचंद के बाद वे पहले कथाकार है जिन्होंने अपनी कृतियों में ग्रामीण-जीवन की विसंगतियों का अत्यंत विशदता से अंकित किया है।''[32] सामाजिक पक्षधरता उनके उपन्यासों की पहली विशेषता है। उनके उपन्यास प्रगतिशील चेतना से संपन्न है। नागार्जुन ने मिथिलांचल की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं, कुरीतियों, अंध विश्वासों, असंगतिर्यों का गहराई से अध्ययन किया है। और युगानुरुप समाधान भी प्रस्तुत किये है। उन्होंने किसान-मजदूरों पर जमीनदारों के अत्याचार, शोषण, तथा सदियों से उपेक्षित - पीडित, शोषित नारी, उच्च जाति के बाह्याडंबर कर्मकांड और झूठी शान-शौकत, रुढिवादी मान्यताओं के पक्षधर ब्राह्मणों की खोखली मान्यताओं और नैतिकता पर तीखे प्रहार किये है। ''जन बनिहार, कुली-मजूर, बनिया-खवास, गाँव की विधवाएँ और दुसरी सताई जाती रही स्त्रियाँ धर्म के नाम पर पलनेवाली धूर्तताएँ और पाखंड इन सब तानों-बानों से नागार्जुन के कथासाहित्य का विशाल कैनवास तैयार होता है। उनका संपूर्ण साहित्य उन अत्यंत साधारण लोगों का साहित्य है जो अपनी मेहनत, निष्ठा और ईमानदारी के बावजूद एक और नारकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।''[33]

भारत का ग्रामीण समाज आज भी अत्यंत पिछडा है। अनेक सामाजिक समस्याएँ है। विधवा-विवाह, अनमेलविवाह, वेश्यावृत्ति, बहुपत्नी प्रथा। नारी के क्रय-विक्रय की समस्याएँ, सामंती समाज की समस्याएँ जो समाज में जडता और गतिरोध पैदा करती है। नागार्जुन अपने उपन्यासों में इन समस्याओं का युगानुरुप समाधान खोजने का श्लाघ्य प्रयास करते है।

भारतीय समाज में नारी के वैधव्य जीवन की समस्या कोई नई समस्या नहीं है। वर्ग-विभाजन से नारी के शोषण की शुरुआत होती है। ''भारतीय समाज में नारी वर्ग ही सर्वाधिक पीडित रहा, अछुत वर्ग से भी अधिक।''[34] नागार्जुन ने अपने उपन्यास - रतिनाथ की चाची, नई पौध, बलचनमा, दु:खमोचन, उग्रतारा में भारतीय समाज में अपमानित, तिरस्कारपूर्ण और यातनापूर्ण जीवन जीनेवाली नारी के वैधव्य जीवन का यथार्थ चित्रण किया है।

स्वयं नागार्जुन बिहार के निम्न मध्यवर्गीय मैथिल ब्राह्मण समाज में जन्म लेकर प्रत्यक्ष द्रष्टा के रुप में विधवाओं के तिरस्कृत व यातनापूर्ण जीवन के सहभागी रहे है। उनके प्रथम उपन्यास - 'रतिनाथ की चाची' की विषयवस्तु एक उपेक्षित अपमानित और यातनापूर्ण वैधव्य जीवन जीती गौरी से संबंधित है। गौरी का देवर जयनाथ रुग्ण मानसिकता का एक कामुक पुरुष है जो गौरी को अपनी कामुकता का शिकार बनाता है। गौरी गर्भवती हो जाती है। यही से उसके सामाजिक तिरस्कार और यातनापूर्ण जीवन की शुरुआत होती है। इस स्थिति का वास्तविक कारण खोजती हुई गौरी इस निष्कर्ष पर पहूँचती है कि ''दरिद्र कुल में लडकी ब्याहने का ही परिणाम था।''[35] लेकिन उपन्यासों, उग्रतारा और दु:माचेन में विधवा समस्या का समाधान पुनर्विवाह में खोजते है। दु:खमोचन उपन्यास की माया का विवाह कुलीन मगर दरिद्र परिवार में हुआ था। उसका पति बाढ में नाव उलटने से मर गया। ''वह ससुराल नहीं गयी। वहाँ बूढी सास थी, आवारा देवर था --- निर्वाह बड़े मुश्किल से होता था। बड़ी भाभी के आग्रह से माया मायके में ही जम गयी।''[36] विधवा माया और विधुर कपिल के संपर्क में आती है, दोनों विवाह करने का सोचते है। ऐसी स्थिति में ग्रामीण-समाज के प्रगतिशील और प्रक्रियावादी-रुढीवादी क्या सोचते है, नागार्जुन ने उनका वास्तविक चित्रण किया है। विधवा समस्या का सही समाधान पुनर्विवाह में खोजते है। 'नई पौध' में भी विधवा समस्या का समाधान पुनर्विवाह के रुप में प्रस्तुत कर उन्होंने नये सामाजिक जीवन की संभावनाओं में विश्वास जताया है।

भारतीय समाज में अनमेल विवाह एक सामाजिक बुराई है। 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध', 'पारो', 'उग्रतारा' उपन्यासो में नागार्जुन ने अनमेल ब्याह की समस्या के सामाजिक,

आर्थिक कारणोंपर प्रकाश डाला है। 'नई पौध' में खोखा पंडित अपनी पंद्रह वर्षिय ना तिन बिसेसरी का ब्याह साठ वर्षीय बुढे के साथ कर रहे थे। नागार्जुन एक प्रगतिशील चेतना संपन्न कथाकार है, इसलिए इस ब्याह का विरोध गाँव के युवकों से कराते है, और अंत में समाजवादी दृष्टिकोण से एक प्रगतिशील युवक वाचस्पति से करा कर नई पीढी में आस्था व्यक्त करते है। 'उग्रतारा' की उगनी भी इस तरह पचास साल के अधेड सिपाही को छोडकर पूर्व-प्रेमी कामेश्वर से अन्तर्जातीय विवाह कर प्रगतिशीलता का परिचय देती है। 'पारो' उपन्यास में अनमेल विवाह का दुष्परिणाम है, असमय मृत्यु। इस प्रकार इन उपन्यासों में अनमेल विवाह और उसकी परिणति पर बड़े यथार्थ ढंग से विचार करते इस कुप्रथा पर करारा व्यंग्य किया है। करारी चोट भी।

भारतीय समाज में वेश्यावृत्ति सामंती व्यवस्था की देन है। सामंती व्यवस्था में बहु-विवाह को एक सामाजिक कानूनी रुप देकर नारी को भोग-विलास का साधन बनाकर अत्याचार और शोषण किया जाता था। अब भी खुले आम उसे क्रय-विक्रय की वस्तु बनाकर भोगा जाता है। इन दिनों इस कुप्रथा के कारणों में मूल कारण आर्थिक ही हो गया है। नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'कुम्भीपाक' में उस कुप्रथा का अत्यंत यथार्थ रुप में उठाया है।

जातिवाद हमारे समाज की प्रमुख विशेषता है। उच्च जातियों ने अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिए जातिवाद को बनाये रखा है। इस निम्न जाति में उत्पन्न व्यक्ति हीन भावना से ग्रस्त रहा है। नागार्जुन के 'हीरक जयंती' में हरिजन जाति के विधायक बुझावन राम को लगा कि "सारा आसमान महंतजी की उन पीली, सुनहली जटाओं से भर गया है। जटा की हर एक मोठी लट बुझावन राम की गर्दन को अपनी लपेट में लेकर गांठ सी कस गयी है और हरिजन विधायक का दम घुटने लगा। बेचारे की घिग्घी बंध गयी।"[37]

यह वास्तविकता है कि श्रम निम्न जाति के लोगों ने किया है और शोषण वह अत्याचार भी उन्हीं पर हुअे है। इस जातिवाद की परिणति छुआछूत और अस्पृश्यता में हुई है।

शिक्षा प्राप्ति का अधिकार भी ब्राह्मणों ने अपने पास ही रखा। शूद्र संस्कृत के स्तोत्र नहीं याद कर सकता। 'रतिनाथ की चाची' में कुल्ली राउत को संस्कृत के कई स्तोत्र याद है। गायत्री भी

उसे आती है ऐसे निम्न जाति के कुल्ली राउत को ब्राह्मण लोग कैसे सहन कर सकते है। जयनाथ को किसीने बता दिया तो वह फुफकार उठे "साले की चमडी उधेड लूँगा। शूद्र है तो शूद्र की भाँति रहे।"[38] नागार्जुन की यह चिंता स्वाभाविक ही है कि अगर निम्न जाति के लोगों को उच्च जातियों के समान सामाजिक अधिकार मिले होते और समान शिक्षा का अधिकार मिला होता तो वे भी पढ लिख कर समाज में अच्छी स्थिति प्राप्त कर लेते, न तो उनका शोषण होता न कोई अत्याचार।"[39]

भारत में किसान-मजदूरों का संघर्ष राष्ट्रीय मुक्ति के लिए किये गये भारतीयों के संघर्ष का ही एक अंग था। नागार्जुन समाजवादी चेतना से संपन्न कथाकार है। अत: उनके उपन्यासों में वर्गीय चेतना का प्रसार दिखाई देता है। 'रतिनाथ की चाची' के किसानों में वर्गीय चेतना का प्रादुर्भाव हो चुका है। किसानों का परम शत्रु जमीनदार और सामंत वर्ग है। यह किसानों ने पहचान कर वे संगठित होने लगे यह वर्गीय चेतना का परिणाम है। नागार्जुन गाँव में किसानों के जातिगत नहीं उनके वर्गीय आधार को पहचानते है। 'बाबा बटेसरनाथ' के हलवाहे भी वर्गचेतना संपन्न हो गये है। रुपडली गाँव के पोखर की कछार पर समूचे गाँव का अधिकार है। उस पर फन्नी अपने दो हलवाहों से हल चलवा रहा है। इस पर सभी आपत्ति करते है। विरोध करनेवालों में सभी जाति धर्म के लोग है। "इनमें पंडित, शशिनाथ ठाकुर, हाजी करीमबक्स है, मोसम्मान झुडियाँ है, अहिरों की बिरादरी के गोइड महतो और सहदेव राउत है, भद्दू पासवान है, विजय बहादुरसिंह सिसोदिया है, जहर अली जोलहा है, हलवाहे-चरवाहे है । कौन नहीं है ?"[40]

नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग को दो स्तर पर चित्रित किया गया है। किसान और जमींदार के बीच तथा औद्योगिक क्षेत्र में पूंजीपति और सर्वहारा के बीच, कृषी क्षेत्र में हो रहे वर्ग संघर्ष को अधिक व्यापकता से चित्रित किया है। किंतु नागार्जुन का विचार है कि जीत किसान-मजदूर एकता की ही होगी। औद्योगिक क्षेत्र में पूंजीपतियोंद्वारा मजदूर वर्ग के शोषण के कारण अंतर्विरोध, खुलकर सामने आ जाते है। नागार्जुन ने 'इमरतियां', 'दु:खमोचन' और 'हीरक जयंती' में इन दो विरोधी-शक्तियों के मध्य संघर्ष को अत्यंत यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया है।

'दु:खमोचन' उपन्यास में इस बात को स्पष्टतया उभारा गया है कि भारत के किसान-मजदूर भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होनेवाली हलचलों से परिचित है। नागार्जुन की उपन्यासों में वर्ग भेद के आधार, विकासोन्मुख सामाजिक वर्गीय स्थिति का चित्रण है। इन उपन्यासों में शोषित और शोषकों के बीच होनेवाले संघर्षों का चित्रण बहुत मात्रा में है। सर्वहारा वर्ग, गरीब मजदूरों और किसानों का दुर्दशाग्रस्त जीवन और उनमें उमड़ता असंतोष ही इन उपन्यासों के मूल उपकरण है।

नागार्जुन के उपन्यासों में नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरुक व सचेत है। 'रतिनाथ की चाची' की नायिका विधवा गौरी, समाजद्वारा प्रताडित, अपमानित, तिरस्कारपूर्ण जीवन जीने को बाध्य है। मगर रुढि और परंपरावादी समाज की मान्यताओं से संघर्ष करती है। इसीलिए चर्खा कातकर अधिक से अधिक स्वावलंबन की ओर प्रयत्न करती है। 'वरुण के बेटे' की माधुरी गाँव के जमीनदारों के खिलाफ आंदोलन में कूद पड़ी है, यह प्रगतिशील चेतना का ही प्रभाव है। नागार्जुन स्वयं प्रत्येक क्षेत्र में नारियों की भागीदारी के प्रबल पक्षधर है। कुम्भीपाक की चम्पा में प्रगतिशील विचारों ने जन्म ले लिया है। वह आश्रयहीन अथवा अनाथ महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना चाहती है। स्वयं टाइपरायटिंग सिखकर मैट्रिक भी कर लेती है।

नागार्जुन की आस्था और विश्वास देश की नई पीढी में है। आजादी से पूर्व भारतवासियों के सामने सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न अंग्रेजी साम्राज्यवाद से मुक्ति का था। मुक्ति आंदोलन में किसानों, मजदुरों के साथ छात्रों की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। 'दु:खमोचन' के दु:खमोचन, कपिल और वेणी माधव, 'नई पौध' के दिगंबर और वाचस्पति, 'बाबा बटेसरनाथ' के जैकिसुन और जीवनाथ, 'बलचनमा' का बलचनमा, 'वरुण के बेटे' के मोहन मांझी, मंगल, 'रतिनाथ की चाची' का ताराचरण आदि युवा पीढी के ऐसे लोग है जिन पर ग्रामीण समाज के नवनिर्माण का दायित्व है।

*** विभिन्न आंदोलनों की अभिव्यक्ति :-**

नागार्जुन ऐसे ही कथाकार है जिनका देश की राजनीति से गहरा संबंध रहा है। यही कारण है कि नागार्जुन के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलनों ने प्रत्यक्षत: भाग लिया है। उनके उपन्यासों में

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन को यथार्थ अभिव्यक्ति मिली है, जिनमें 1920 की अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन, 1930 का सविनय अवज्ञा आंदोलन और सन 1942 का भारत छोडो आंदोलन आदि प्रमुख है।

गांधीजी के 1920 के अहिसांत्मक आंदोलन के बारे में नागार्जुन ने अपने बहुचर्चित उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' में देश की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ अंकन किया है। बाबा बटेसरनाथ ने जैकिसुन को बीते हुए असहयोग आंदोलन की सफलता असफलता की कथा सुनायी है।

नागार्जुन एक ओर राष्ट्रीय आंदोलन में गांधीजी के अहिंसात्मक असहयोग की भूमिका तथा उसकी सफलता-असफलता को स्पष्ट रुप में देखते है। तो दुसरी ओर प्रगतिशील और उभरते हुए क्रांतिकारी शक्तियों को भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देते। 'बाबा बटेसरनाथ' इस हवासे अच्छी तरह परिचित है और जैकिसुन को बताते है - ''बंगाल के नौजवान महात्मा गांधी की असहयोग और सत्य अहिंसा की बातों में आस्था नहीं रखते थे। दुश्मनों को पछाडने के जितने भी तरिके हो सकते है, वे उन्हें आजमाने के पक्ष में थे।''[40]

नागार्जुन के उपन्यासों में सविनय अवज्ञा आंदोलन का वस्तुगत चित्रण हुआ है। 'हिरक जयंती' उपन्यास के ''बाबू राम सागर राम की यूनिवर्सिटी की पढाई छोडकर 32 में नमक उबालने गये, साल भर की सजा हुई जेल की।''[41]

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में किसान-संगठनों एवं उनके औचित्यपर यथार्थवादी ढंग से विचार किया है। भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों की किसान सभाये आदि संगठन इसी से संबंध होकर आंदोलन करती रही है। 'बाबा बटेसरनाथ' के प्रगतिशील युवक जैकिसुन और जीवनाथ आदि सोचते है कि रुपडली गाँव में किसानों की ग्रामीण कमेटी का ढांचा खडा करना होगा। ताकि यहाँ प्रथम रेहुआ थाना किसान सम्मेलन संभव हो सके। किसान सभा के 56 मेंबर बन चुके थे। मेंबर होने की फीस एक आना थी। ''दयानाथ और जैकिसुन ने घूम-घूमकर लोगों को किसानसभा के उद्देश्य समझाए।''[42] 'बलचनमा' उपन्यास में भी किसान किसानसभा के सदस्य बन रहे है।

'रतिनाथ की चाची' में समाजवादी चेतना के प्रचार-प्रसार ने गावों के किसानों में संगठित होने की चेतना जगा दी है, गांव में ही दो-तीन लीडर निकल आये।

इस प्रकार राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के विभिन्न दौर रहे है। नागार्जुन का इनसे प्रत्यक्ष अनुभव रहा है। यही कारण है कि इन आंदोलनों के, उनके उपन्यासों में यथार्थ अभिव्यक्ति मिली है।

प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास में श्रमिकों के शोषण को लेकर बहुत कुछ लिखा गया है, लेकिन ग्रामीण जनता और खेतिहार मजदूर की यातना और तकलीफ का सही और पूर्ण चित्र वहाँ नहीं मिलता। नागार्जुन के उपन्यासों में इस उपेक्षित जनसमूह की व्यथा कथा को केंद्र में रखा गया है। खटमल की तरह जनता का शोषण करनेवाले पूंजीपतियों और जमीनदारों के प्रति तीव्र आक्रोश का स्वर नागार्जुन के उपन्यासों में मुखर है। 'बाबा बटेसरनाथ' में उन्होंने हैरानी व्यक्त की है कि भूतपूर्व जमीनदारों और राजाओं को हमारी सरकारद्वारा संरक्षण और प्रोत्साहन मिल रहा है।

नागार्जुन ने जमींदारों के सामाजिक - आर्थिक शोषण, दमन और अन्याय के अतिरिक्त उनके अन्य स्वरुपों पर प्रकाश डाला है, जिनका संबंध उनके वैयक्तिक, अंतरंग और पारिवारिक जीवन से है।

नागार्जुन के उपन्यास रुसी साम्यवादी उपन्यासों से बहुत गहरे रुप में प्रभावित लगते है। नागार्जुन के उपन्यासों में भी वर्गभेद के आधार पर सामाजिक विकासोन्मुख युग-विशेष की वर्गीय स्थिति का चित्रण हुआ है। साथ ही उस विकास प्रक्रिया में अनिवार्य रुप से होने वाले वर्ग संघर्षो का भी। 'बलचनमा' नामक उपन्यास में नागार्जुन ने आर्थिक वैषम्य के शिकार कृषक वर्ग की कारुणिक दशा के चित्रण के साथ सर्वहारा की वर्ग-संघर्ष की भूमिका को रेखांकित किया है।''[43] 'बलचनमा' का कथानक ही सामंती जमींदारी प्रथा में पिसते हुए ग्रामीण-मजदूरों किसानों का प्रतिनिधित्व करता है। जमीनदारों के अत्याचारों का अनेक चित्र इस उपन्यास में है। किसानों को समाजवादी चेतना से प्रभावित होकर वर्ग संघर्ष पर तुले हुए रुप में चित्रित किया गया है। बलचनमा को अभावों और उसके आधारपर शोषित की समस्याओं के आर्थिक पक्षपर समाजवादी दृष्टिकोण से विचार प्रस्तुत करने में नागार्जुन को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

'बाबा बटेसरनाथ' से सर्वहारा वर्ग की जागृति, संगठन शक्ति और संघर्ष का चित्रण विशेष रुप से हुआ है। गाँव की उन्नति के लिए प्रयत्नशील नवयुवकों को वटवृक्ष समर्थन करता है। 'रतिनाथ की चाची' में वर्ग द्वंद्वं की व्यापक रुप से तैयारी हो रही है। जमींदारों के विरुद्‍ध किसान संगठित हो रहे है। वे बित्ताभर भी जमीन छोडने को तत्पर नहीं। कृषक आंदोलन सभी क्षेत्रों में पनप रहा है। दु:खमोचन घरेलु मजदूरिनों में भी वर्ग चेतना व्याप्त है। वे अब पुराने रेट पर काम नहीं करना चाहती। काम बंद करके हड़ताल की सूचना देती है। इसी तरह पंचायत में किया गया फैसला निम्न वर्ग द्‍वारा उच्च वर्ग के प्रति आक्रोश को व्यक्त करता है।

पिछडा हुआ ग्रामीण समाज धार्मिक पाखंडों में विश्वास करता है, अत: धूर्त व्यक्ति जनता को धोखे में रखकर किस प्रकार ठगते है, इसकी अीव्यक्ति करते हुए अपने उपन्यासों में नागार्जुन ने इस पाखंडों में अनास्थावादी दृष्टिकोण अपनाया है। 'बाबा बटेसरनाथ' में समाज में प्रचलित वृक्ष पूजा उसमें निवास करनेवाले देवताओं ब्रह्मबाबा आदि में जनता की अंधशक्ति से वटवृक्ष द्‍वारा परतंत्रता का अनुभव कराकर धार्मिक पाखंडों में अनास्था व्यक्त की गयी है। अपने सामने ब्रह्मबाबा की निमित्त की गयी पशु-बलियों का बाबा बटेसरनाथ को हार्दिक दु:ख है। पहले लोग स्वच्छंद भाव से उसकी टहलियों की छाया में विश्राम करते थे। परंतु ब्रह्मबाबा के कारण वे पेड के नीचे खडे होने में भी हिचकिचाते है। इस परतंत्रता से बटेसरनाथ को कष्ट है। नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची' में इन धार्मिक पाखंडों कीं कटु आलोचना की है।

अनमेल विवाह से उत्पन्न नारी जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण करते हुये नागार्जुननें व्यापक सामाजिक क्रांति की ओर संकेत किया है। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में इस समस्या का विस्तृत विवेचन किया है। ''इस दृष्टि से नागार्जुन के उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' तथा 'नई पौध' महत्वपूर्ण स्थान रखते है। अनमेल विवाह के कारण कितने परिवार अशान्तिपूर्ण जीवन बिताते है। इसका उदाहरण 'रतिनाथ की चाची' में वैद्‍यनाथ और गौरी है। 'नई पौध' में बिसेसरी और उसकी माँ राजेश्वरी के जीवन की दयनीय अवस्था का चित्रण करते हुए तथा वाचस्पति द्‍वारा समस्या

की यथार्थ व्यास्था करवाते हुए अनमेल विवाह के मूल कारण की ओर संकेत किया है।''[44] 'नई पौध' उपन्यास में मैथिल ब्राह्मणों में प्रचलित रुपये की लालच में लडकी को पशु के समान बेचने की तथा अन्य पारिवारिक कुरीतियों के विरुद्‌ध समाज के मध्य वर्ग की नई पीढी के संघर्ष और उनकी उद्‌बुद्‌ध होती हुई चेतना का चित्रण है।''[45]

नागार्जुन का विश्वास है कि व्यक्ति को बनाने-बिगाडने में आर्थिक परिस्थितियों का मुख्य हाथ रहा है। आर्थिक वैषम्य की परिस्थिति मनुष्य को संघर्ष के लिए कठोर धरातल तैयार करती है। 'बलचनमा' का जीवन इस तथ्य को प्रमाणित करता है। बलचनमा की विपत्तियों का मूल कारण था आर्थिक विपन्नता, इसी से छूटकारा पाने के लिए उसे सतत संघर्ष करना पडा। ''बलचनमा का चरित्र इस मार्क्सवादी धारणा की भी पुष्टि करता है कि भौतिक शक्तिया मानव को बदल सकती है और वही मानव भौतिक शक्तियों को भी बदल देता है और ऐसा करने के दौरान अपनी भी काया पलट करता है।''[46]

वर्गसंघर्ष के सिद्‌धांत में आस्थावान समाजवादी उपन्यासकार नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग भेद के आधार पर सामाजिक विकासोन्मुख युग-विशेष की वर्गीय स्थिति के चित्रण का प्रबल आग्रह रहा है। भारतीय समाज में शोषित-शोषक संघर्ष के दो विशिष्ट पहलू - किसान, जमींदार संघर्ष एवं मजदूर-पूंजिपति संघर्ष है। नागार्जुन का संघर्ष के इन दोनों पहलुँओं में से पहले का निकट का परिचय था। और यही कारण है कि इनके उपन्यासों में अभिव्यक्त वर्ग संघर्ष का चित्रण पूर्णत: ग्रामीण और यथार्थवादी आधार पीठिका पर है।

हिंदी साहित्य में प्रगतिवादी उपन्यासकारों का योगदान भी महत्वपूर्ण है। उपन्यासों के पात्र, प्रगतिवादी विचारों से प्रभावित है। नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, शिवशंकर शुक्ल, भगवती प्रसाद वाजपेयी, यशपाल, शिवप्रसाद सिंह, शैलेश मटियानी आदि जैसे कई उपन्यासकारों की कृतियों में इसके दर्शन होते है। शिवकुमार शुक्ल मोंगरा (1970) में चमार चरणदास परंपरागत धंदा छोडकर सरकारी कर्ज लेकर मुर्गी पालने का धंदा करता है। सत्यप्रकाश पांडे के चंद्रवदनी (1971) में क्रांतिकारी घोषाल डॉ. रेणु संगठन शक्ति के बलपर पुलिस शोषण के खिलाफ संघर्ष करते है। बलिप्रथा का विरोध करते

है। भगवती प्रसाद शुक्ल के 'खारे जल का गांव' में जातीय भेदाभेद का विरोध करने वाला सुग्रीव प्रगतीवाद का प्रतीक है। नरेंद्र वर्मा के 'सुबह की तलाश' (1972) मे फागुन पंडित जातिय भेदाभेद को उखाडकर फेंक देता है। और जन आंदोलन की स्थापना करता है। तो हिमांशु जोशी के 'कगारे की आग' (1976) की गोमति पति हत्या के प्रतिशोध की आग में कालभैरवी बनकर जमींदारों के प्रति संघर्ष करती है।

राकेश वत्स के 'जंगल के आसपास' का दिनेश और शामा जमींदार तथा ओझा की मनमानी का प्रतिरोध करते तो शिवप्रसादसिंह के 'शैलूष में नटनी' की सावित्री जमीन एवं अधिकारों के प्राप्ति के लिए नारी का संगठन बनाती है। मदन दीक्षित के 'मोरी की ईट' में मेहतर लोग संगठन बनाते तो जगदीशचंद्र के 'धरती धन अपना' तथा 'नरकुंडवास' में काली मजदूरों का संगठन बनाकर मालिकों के सामने मजदूरों की मांगे रखता है।

यहाँ स्पष्ट है धीरे-धीरे हिंदी साहित्य में चेतना की लहर फैल रही है। यह परिवर्तन समाजव्यवस्था को दर्शाता है तथा साहित्यकारों के विचारों को स्पष्ट करता है। उपन्यासकार के विचारों के वाहक पात्र ग्रामचेतना को दर्शाते है। यही चेतना शोषण का प्रतिरोध करके मुक्त ग्रामजीवन स्वतंत्र मानवी जीवन का प्रतीक है। नागार्जुन की रचनाएँ यही कार्य कर रही है, ऐसा लगता है।

आलोच्य उपन्यासो में प्रगतिवादी विचाराधारा को रेखांकित करने का प्रयास किया है। आलोच्य कृतियों में भी नई विचारधारा से प्रभावित पात्र दिखाई देते है, जो इस प्रकार -

नागार्जुन के '**रतिनाथ की चाची**' (1948) में प्रगतिवाद के दर्शन स्पष्ट रुप से लक्षित होते है। विधवा नारी की समस्या पर लिखा हुआ यह उपन्यास प्रगतिवादी दृष्टिकोन का प्रतीक है। समाज में विधवा नारी की स्थिति, समाज का विधवा नारी की ओर देखने का दृष्टकोण, उसपर थोपे हुअे रुढि, प्रथा परंपरा के बंधन आदि का लेखा-जोखा इस उपन्यास में स्पष्ट किया गया है।

नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची' का चाची एक ऐसा पात्र है, जो समाज से बहिष्कृत एवं तिरस्कृत जीवन जीता है। गौरी जो 'रतिनाथ की चाची' देवर की वासना की शिकार बनी है।

समाज ने ताना देकर बिरादरी से बाहर निकालकर उसके साथ दुर्व्यवहार किया। उसका लडका उमानाथ भी उसे समझ नहीं पाता और उसे पीटता है। केवल रतिनाथ उसे समझ पाता है। चाची ताराचरण की मदत से विश्वभर की खबरें रखती है। रुस पर हमला कर दिया यह सुनकर उसे बेहद खेद होता है। चाची कहती है - "कैसा दिमाग है, दरिदर का मुदा बच्चा-बच्चा कर मरेगा तभी रुस दखल होगा।"[47] चाची को केवल अपने गाँव की ही नहीं तो विश्व की चिंता सताती है। इसीतरह गाँव तथा समाज से बहिष्कृत होनेवाली चाची अंत में सारे गाँव की मुखिया अर्थात नेता बन जाती है। यह परिवर्तन केवल चाची में ही दिखाई देता है ऐसा नहीं तो पूरा शुभंकरपूर गाँव में परिवर्तन हो जाता है

शुभंकरपूर गाँव के जमींदार दुर्गानंदसिंह ने गाँव के किसान मजदुरों को संगठित करता है और गाँव में सुधार करवाता है। इसका वर्णन करते हुअे उपन्यासकार लिखते है - "ताराचरण के रुप में नये नेतृत्व का उदय हुआ था। बूढे पहले कुछ दिनों तक उसे मान्यता देने को तैयार नहीं थे, परंतु बाद में उन्हें झुकना पड़ा। बुढे समाजवादी पुराना अधिकार कायम रखने के लिए हाथापाई करके कई बार शिकस्त खा चुके थे --- राजा बहाद्दूर के दामाद ने किसी देशी नाटक मंडली को बुलाया था। उनका विचार था कि शुभंकरपूर वाले भी आकर नाटक देखे, वे हमारी प्रजा है। उन्हें अलग से बुलावा भेजने की जरुरत ही क्या है ? नवयुवक अड गये, बिना बुलावा के हम क्यों जायेंगे ? --- ताराचरण ने कहा - जमाना बदल गया है, हम जब अंग्रेजों की नाक में कौडी बाँधते है तो राजा बहादुर की क्या बिसात ? उनका दामाद खुद आकर हमे लिवा ले जाय, तब चलेंगे। अंत में हुआ यही कि दो-एक बूढों को छोडकर और कोई नहीं गया।"[48]

ताराचरण शुभंकरपुर गाँव विकास करनेवाला प्रगतिवादी विचारधारा का वाहक बनकर गाँव में एकात्मता की शक्ति को बढाता है। गाँव में सुधार करके, जातिभेद मिटाकर, जमीनदारों के अत्याचार का संगठित रुप से मुकाबला करते है। जातिभेद मिटाना प्रगतिवादी चेतना का लक्षण ही है।

नागार्जुन के '**बलचनमा**' (1952) उपन्यास का बलचनमा अन्याय विद्रोह के खिलाफ आवाज उठाता है। किसान, मजदुरों का संगठन बनाता है। गाँव के जमीनदार मझले मालिक के

अत्याचार के कारण बलचनमा को अपने पिता को बचपन में ही खोना पडा। बचपन में ही उसके मालिक ने काम पर रख लिया, लेकिन मालिक के अत्याचार फिर भी कम नहीं हुअे। मलिकाइन के उसपर मन चाहे जुल्म ढालना शुरु किया। बलचनमा निर्धन होने के कारण उसे अपने जीवन में कई दु:खों का सामना करना पडता है। बलचनमा कहता है - ''न जाने के घडा आंसू से हमारा बचपन सींचा गया था।''[49] जीवन की ये स्मृतियाँ केवल बलचनमा तक ही सीमित नहीं है। ऐसे अनेक बलचनामाओं को नागार्जुन ने करीब से देखा होगा। इसलिए कहा गया है, बलचनमा संपूर्ण निम्नवर्ग का प्रतिक बन गया है। नागार्जुन बलचनमा को जुठन खाते, खुरखन को निर्धनता में जीवन व्यतित करते हुअे तो चित्रित करते ही है, साथ ही उनमें चेतना का विकास और उन्हें अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए सजग भी करते है। नागार्जुन का बलचनमा अभावों में जीवन व्यतीत करते हुअे भी अपनी विकसित चेतना से जीवन की दिशा ढूँढने का प्रयत्न करता है। नागार्जुन ने स्वयं पात्रों के बीच से व्यंग्य और आक्रोश का वर्णन किया है। अत: बलचनमा में प्रगतिवादी स्वर मुखरित होता है।

हृदयहीन जमीनदारों की क्रूर एवं पाशविक लीला का बडा स्पष्ट चित्रण उपन्यासकार ने किया है। बलचनमा के गाँव में धीरे-धीरे क्रांति के बीज बोये जाते है। किसन संगठित होकर अपने हक्क के प्रति सजग होते है। गाँव में अखबार शुरु होता है। फूलबाबू तथा अन्य नेता लोगों की बेइमानी से लोग परिचित होते है। गाँव में बच्चु अखबार पढ़कर किसानों को सुनाता है। बच्चू 'किसान सभा' की स्थापना करके अनेक किसानों को सदस्य बनाता है। किसान भी उसे सहायता करते है। इसके बारे में उपन्यासकार लिखते है - ''समूचे गाँव में पचास एक मेंबर बने होगे। महापूरा के किसानों की लडाई का ही यह असर था। मालिकों और बडे किसानों को छोडकर बाकी सबकी दिलचस्पी थी, पडोसी इलाके के उस आंदोलन की ओर मनियार चाचा से लेकर शेख अब्दुल तक, तारानंदबाबू से लेकर तीरी अमात तक और फूदन मिसिद की विधवा से लेकर मोमिन मोसंमाज हमीदा तक -- सबने मेंबरी की रसीद ली। और एक-एक आना दिया।''[50] किसान संगठन किसान सभा की स्थापना, सदस्य बनाता नई चेतना का प्रतीक है। नागार्जुन ने 'बलचनमा' में प्रगतिवादी यथार्थ दृष्टि और आँचलिक बोध की स्पष्टता यथार्थ

रुप में की है। “ ‘बलचनमा’ हिंदी के प्रगतिवादी उपन्यास साहित्य की एक श्रेष्ठ प्रतिनिधि रचना है और नागार्जुन की कृतियों में तो यह सर्वश्रेष्ठ कृति स्विकार की गई है।”[51]

नागार्जुन ने **‘नई पौध’** (1953) में भी प्रगतिवाद की विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें मैथिल समाज में प्रचलित पुरानी वैवाहिक कुरीतियों तथा अनमेल विवाह के खिलाफ आवाज बुलंद की गई है। ‘नई पौध’ में मिथिलांचल के गाँव के प्रगतिशील नवयुवक है, जिन्होंने नई सभ्यता और संस्कृति के रोशनी में आँखें खोली है। ये सभी एक गाँव में संपन्न होने वाले अनमेल विवाह को रोककर यथा योग्य विवाह संपन्न कराने को कटिबद्ध हो जाते है। यहाँ नारी शोषण के खिलाफ आवाज उठाई है। प्रगतिशील विचारों के युवक साठ साल क बूढे वर चतुरानन चौधरी से खोखाई झा की षोडस वर्षीया नतिनी बिसेसरी के अनमेल विवाह को रोककर वाचस्पति नामक प्रगतिशील विचारों वाले नवयुवक के साथ शादी संपन्न कराते है। वस्तुत: गाँव के जड़ता भरे सामाजिक वातावरण को चुनौती देकर इस प्रकार का क्रांतिकारी कदम उठाया गया है। यह क्रांति ‘नई पौध’ की नई दिशा का परिचायक है। उपन्यास की इस घटना से ऐसे अर्थलोलूप, स्वार्थी एवं अभिजात कुल में उत्पन्न एक ग्रामीण व्यक्ति का कुत्सित चरित्र भी प्रकाश में आया है। जो केवल धन प्राप्ति के लिए भेड-बकरियों की तरह अपनी ही बेटियों को हृदयहीन की तरह वृद्धवरों के हाथ बेच डालता है। नतिनी को बेचे जाने की घटना में गाँव के प्रगतिशील युवकों के हाथ उसे पराजय का मुह देखना पडता है। यह घटना नये मानवीय मूल्यों की विजय का प्रतीक है।

खोखाई पंडित द्वारा अपने लडकियों को बेचना नारी शोषण का प्रतीक है तो गाँव के मुखिया चीनी और मिट्टी का तेल कंट्रोल रेट पर और समय पर कम ही लोगों को देता है। यह पूंजीवाद का प्रमाण है। बिसेसरी का अनमेल ब्याह बमपाटी याने गाँव के नवजवानों द्वारा रुकवाना क्रांति और नई चेतना का प्रतीक है। और वाचस्पति का बिसेसरी से ब्याह करना मानवता का चित्रण है। इस तरह लेखक ने नारी शोषण, क्रांति और नई चेतना का वर्णन किया है।

नागार्जुन के **'बाबा बटेसरनाथ'** (1954) में मानवतावादी विचारों से रुपडली आंचल का निम्नवर्गिय जीवन चित्रित किया है। नागार्जुन ने जमीनदारी उन्मुलन के युग में ढहती पूँजीवादी और सामंती व्यवस्था के तीखें - परिणामों की ओर संकेत किया है। गाँव में होनेवाले अत्याचार एवं ग्रामीण जीवन आदि का तीन सौ साल का लेखा-जोखा इसमें बताया गया है। गाँव में पलनेवाली जातीयता, उसके आधार पर होने वाले अत्याचार को प्रस्तुत किया है। बाबा बटेसरनाथ ने आजादी के बाद भी जीवित मिथिलांचल की सामंतशाही और काँग्रेसी हुकूमत के द्वारा उसे परिपोषित किये जाने के कारनामों का पर्दाफाश किया है। बाबा का कथन है - ''जाते - जाते भी ये राजा, जमीनदार, भू स्वामी, सामंत चांदी काट रहे है --- और यह आजाद सरकार इन सामंती श्रीमंती को ज्यादा-से-ज्यादा हरजाना देने की तिकड़म में भिड़ा रही है। --- व्यक्तिगत सम्पत्ति के वाजिब हकों का दायरा बेहर बढाकर जमीनदारी प्रथा का यह नकली श्राद्ध काँग्रेसी लोग कर रहे है।''[52] काँग्रेस की नीति, जमींदारों के हितों की रक्षा करने की प्रवृत्ति पर बाबा का यह करारा व्यंग्य है। नागार्जुन मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित है, उन्होंने बार-बार काँग्रेसी नीतियों का विरोध किया है। अर्थात इसके मूल में सर्वहारा वर्ग के हितों की रक्षा यही लक्ष्य रहा है। बाबा ने पुरानी गाँव की सामंती हुकुमत, मजदूर एवं किसानों का शोषण आदि का वर्णन किया है।

असहयोग आंदोलन और ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध किये गये भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का वर्णन कर बरगद वृक्ष ने जैकिसुन को संघर्ष की चेतना प्रदान की। जैकिसुन और दयानाथ ने मिलकर किसान सभा और नौजवान संघ की कमेटियों की स्थापना की जो अन्यायों का विरुद्ध कार्य करती थी। इसीतरह यहाँ क्रांति का चित्रण मिलता है। जीवनाथ, जैकिसुन, दयानाथ आदि के द्वारा ग्रामीण स्थिति में सुधार लाना संगठित शक्ति की सफलता का परिचायक है। इस प्रकार लेखक ने जनसहयोग द्वारा स्वाधीनता शांति, प्रगति को संदेश दिया है। किसानों का सुदृढ संगठन ही जमीनदारों का विरोध करने में सफल हो सकता है। इस पर यहाँ प्रकाश डाला है। स्पष्ट है लेखक ने जमीनदारी शोषण, संघर्ष की चेतना, जातियता आदि का यथार्थ चित्रण किया है।

नागार्जुन के '**दुःखमोचन**' में भी प्रगतिवादी विचारधारा का वर्णन मिलता है । टमकाकोइली ग्राम में पाँच हजार से उपर घनी आबादी है। गाँव में लोगों के जीवन को दुखों से मुक्ति दिलानेवाला पुरुष है, जो झुठे अभिमान, झूठी मर्यादा और अनावश्यक भावुकता जैसी सारी फिजुल बातों से अपने को दूर रखता है। जनसेवा के लिए कटिबद्ध इस पुरुष में कोई भेदभाव नहीं।

ग्रामसुधार और ग्रामविकास में पोखरों की मरम्मत, कुओं की खुदाई आदि विकासात्मक कार्यों की योजना करके वह सफल करता है। यही उसकी प्रगतिशील महत्वकांक्षी विचारधाराएँ सामने आती है। गाँव में आग लग जाने से समूचा गाँव आग की चपेट में आता है, तब दु:खमोचन गाँव के लोगों को मदद करके नवचेतना का स्वर प्रदान करता है। गाँव में नित्याबाबू, टेकनाथ, पूलकितदास जैसे पूँजीपति लोग गरीब लोगों का शोषण रोकना और उनकी स्वार्थी प्रवृत्ति से उन्हें अवगत कराने का कार्य दुखमोचन करता है। दुखमोचन विधुर कपिल और विधवा माया का अंतरजातीय और विधवा पुनरविवाह करके गाँव में क्रांति करता है और साथ में जातियता के बंधन को कम करने का प्रयास करता है। गाँव के बूढे चमार बौधू चाचा द्वारा गाँव में झंडा फहराना ही जातीभेद को नष्ट करके गाँव की एकता में राष्ट्र की एकता का चित्रण यहाँ मिलता है। स्पष्ट है गाँव में सुधार, ग्रामविकास, नवचेतना, जातीभेद का विरोध, मानवता आदि प्रगतिवादी विचारधाराएँ नागार्जुन ने चित्रित करके उनका यथार्थ वर्णन किया है। आंतरजातीय विवाह रचना, ग्राम विकास में विविध कार्यों में सहयोग होना, जनता का साथ मिलना, विधवा विवाह करना, प्राकृतिक आपदा में सहाय्यता करना आदि अनेक घटनाओं के आयामों से ग्रामजीवन में आनेवाली नई चेतना के दर्शन होते है।

निष्कर्ष :-

नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची' (1948), 'बलचनमा' (1952), 'नई पौध' (1953), 'बाबा बटेसरनाथ'(1954), 'दुखमोचन'(1957) आदि उपन्यासों में प्रगतिवादी एवं मार्क्स के विचारों का चित्रण किया है। नागार्जुन ने अपने ही भाव-भावना एवं विचारों को अभिव्यक्ति देने वाले पात्रों का सृजन किया है। उपन्यासों में अन्याय के खिलाफ क्रांति, नवचेनता, नारी शोषण,

जमीनदारों द्वारा होनेवाला शोषण, रुढी परंपरा के नाम पर होनेवाला अत्याचार, जाति-पाति, अशिक्षा आदि का वर्णन किया है और शोषण, अत्याचार आदि के खिलाफ आवाज उठायी है। 'रतिनाथ की चाची' में ताराचरण किसानों का संगठन बनाकर जमीनदारों को फटकारता है, यहाँ प्रगतिवादी चेतना का प्रमाण है। 'बलचनमा' में जमीनदारों द्वारा होनेवाला किसानोंपर अत्याचार, नारी शोषण और बलचनमा का जमीनदारों के साथ संघर्ष आदि में प्रगतिवादी चेतना ही है। नागार्जुन ने 'नई पौध' में भी नारीशोषण और नौजवानोंद्वारा संघर्ष की चेतना आदि में प्रगतिवादी विचारों का वर्णन यहाँ मिलता है। 'बाबा बटेसरनाथ' में किसानों का शोषण, जातीयता, संघर्ष की चेतना आदि द्वारा प्रगतिवादी विचारों का यथार्थ चित्रण किया है। 'दुखमोचन' में भी मानवता, जातिभेद विरोध का चितण, नवचेतना एवं प्रगतिवादी विचारधारा को स्पष्ट करता है।

जमीनदारों की मनमानी को थोंपना, कुप्रथा-रुढी मान्यताओं को ठुकराना, समानता एकता की स्थापना करना, नारी अशिक्षा का विरोध करना, सामाजिक समानता की भावना को बढावा देना, मानवता का चित्रण और क्रांति तथा संघर्ष चेतना को प्रदान करना आदि प्रगतिवादी चेतना के प्रमाण है। प्रस्तुत उपन्यासों में इसका चित्रण करने में नागार्जुन सफल रहे है, ऐसा मुझे लगता है।

यहाँ स्पष्ट है अत: ग्रामों के अशिक्षित लोगों में भी अब अपने उपर होनेवाले अत्याचार और शोषण का एहसास होने लगा है। धीरे-धीरे ग्रामों में नई चेतना, क्रांति आदि का प्रसार होने लगा है। परिणामत: प्रगतिवादी चेतना की लहर दौडने लगी है। शिक्षा प्रसार, प्रसार माध्यम, राजनीतिक हक्क आदि के कारण यह बदलाव या जागृति होने लगी है।

नागार्जुन ने विभिन्न अंचल के जन-जीवन की गतविधियों पर दृष्टि डालते हुअे अपनी अनुभूति के आधार पर ग्राम जीवन दर्शन का चित्रण किया है। उनकी रचनाएँ ग्रामजीवन में उभरी प्रगतिवादी चेतना का प्रमाण ही है। प्रगतिवादी विचार धारा के वाहक नागार्जुन की रचनाएं भी प्रगतिवादी चेतना की मिसाल बनी है, ऐसा लगता है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. सरीता माहेश्वर - 'प्रगतिववाद, प्रयोगवाद, नयी कविता', पृ.7.
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल - 'रस मीमांसा', पृ.271.
3. 'राष्ट्रवाणी' - अंक 1, पृ.33.
4. डॉ.रामदरश मिश्र - 'हिंदी उपन्यास : एक अन्तयात्रा', 1968 राजकमल प्रकाशन, , दिल्ली, पृ.113.
5. राहुल सांकृत्यायन - 'साम्यवाद ही क्यो ?', पृ.7.
6. 'नया समाज' - पृ.69.
7. 'नया पथ' - पृ.467.
8. नेने जोशी - 'बृहत मराठी हिंदी शब्दकोश', प्र.सं.1971, संगम प्रेस, पुना, पृ.314.
9. संप. नेने-जोशी - 'बृहत हिंदी मराठी शब्दकोश', 1964, संगम प्रेस, पुना, पृ.239.
10. डॉ.ब्रजमोहन - 'हिंदी अंग्रेजी कोश' - 1980, मिनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, पृ.239.
11. संपा. अरविंदकुमार - 'समांतर कोश हिंदी शिक्षारस' - 1997, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, पृ.969.
12. संपा.नगेंद्रनाथ बसु - 'हिंदी विश्वकोश' - 1986, बी.आर. पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ.488.
13. काशीनाथ अंबलेगे - 'संतों और शिवशरणों के काव्यों में सामाजिक चेतना' - 1990, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, पृ.17.
14. 'नया मापदंड' - त्रैमासिक अक्तूंबर - दिसंबर - 1999, पृ.1.
15. देवेश ठाकुर - 'साहित्य की सामाजिक भूमिका' - 1989, अरविंद प्रकाशन, मुंबई, पृ.14-15.
16. डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल - 'भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना' - 1977, प्रेम प्रकाश मंदिर, दिल्ली, पृ.12.
17. डॉ. पांडुरंग पाटील - 'देवेश कुमार और उनका उपन्यास साहित्य' - 1998, क्लालिटी बुक्स पब्लिकस डिस्ट्रीब्युटर्स - कानपुर, पृ.61.
18. सत्यनारायण - 'विश्वज्ञान स. को. 1 हिंदी विकास', मद्रास - 1969, पृ.12.

19. संपा. नामवर सिंह - 'कला और साहित्य चिंतन साहित्य' - कार्ल मार्क्स 2 व 3, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ.19.

20. वही, पृ.12.

21. डॉ. सुरेंद्र प्रताप यादव - 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना' - 1992, भावना प्रकाशन दिल्ली, पृ.75.

22. डॉ. ज्ञानचंद गुप्त - 'आँचलिक उपन्यास : अनुभव और दृष्टि', प्रथम संस्करण, 1995, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ.8.

23. डॉ. विवेकी राय - 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा - साहित्य और ग्रामजीवन', 1974, लोकभारती प्रकाशान, इलाहाबाद, पृ.109.

24. 'धर्मयुग' - 17 अगस्त 1969, पृ.78.

25. राजेश शर्मा - '125 आधुनिक हिंदी निबंध' - 1988, विक्रम प्रकाशन, दिल्ली, पृ.56.

26. डॉ. मोहन कपूर - 'हिंदी उपन्यास में चेतना प्रवाह पद्धति', 1988, दिल्ली, पृ.3.

27. 'हंस' जनवरी 1999, पृ.160.

28. डॉ. सुरेश बत्रा - 'हिंदी उपन्यास बदल में परिप्रेक्ष्य' - 1996, रचना प्रकाशन, जयपुर, पृ.8.

29. डॉ. सुरेंद्र प्रताप यादव - 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना', 1992, भावना प्रकाशान, पृ.54.

30. कुंवर पाल सिंह - 'साहित्य समिक्षा और यथार्थवाद' - 1985, पीपल्स लिटरेसी, दिल्ली, पृ.136.

31. गोपाल कृष्ण शर्मा - 'उपन्यास और समाज', तारामंडल अलिगढ, प्रथम संस्करण - 1986, पृ.102.

32. शिवकुमार मिश्र - 'प्रगतिवादी', पृ.79-80.

33. 'मधुरेय - आलोचना' : जुलाई-सितंबर, 1972, पृ.50-51.

34. चण्डी प्रसाद जोशी - 'हिंदी उपन्यास : समाजशास्त्रीय अध्ययन', पृ.112.

35. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1967, पृ.26.

36. नागार्जुन - 'दु:खमोचन', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1966, पृ.79.

37. नागार्जुन - 'हीरक जयंती', आत्माराम एंड संज, दिल्ली, पृ.49.

38. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1967, पृ.54.

39. वही, पृ.55.

40. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम पेपर बैंक संस्करण 1985, पृ.90.

41. नागार्जुन - 'हीरक जयंती', आत्माराम एंड संज, दिल्ली, पृ.18.

42. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम पेपर बैंक संस्करण 1985, पृ.145.

43. पी. के. पद्मजा - 'हिंदी उपन्यास साहित्य पर वैचारिक आंदोलन का प्रभाव', पृ.142.

44. एन. रविन्द्रनाथ - 'मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रमथ संस्करण 1979, पृ.239.

45. मंजूलता सिंह - 'हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्ग', पृ.348.

46. एन. रवीन्द्रनाथ - ' मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1970, पृ.251.

47. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1948, पृ.143.

48. वही, पृ.144.

49. वही, पृ.106.

50. नागार्जुन - 'बलचनमा' - किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण - 1962, पृ.197.

51. डॉ. बदरी प्रसाद - 'प्रगतिवादी हिंदी उपन्यास' - ओम प्रकाशन, आजादपुर, दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1987, पृ.125.

52. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ' , राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1954, पृ.39.

---xxx---